अध्याय – 9

व्यावहारिक भू–विज्ञान
(Applied Geology)

व्यावहारिक भू–विज्ञान के अंतर्गत चार विषयों का अध्ययन किया जाता है।

1 भू–जल विज्ञान 2. भू–अभियांत्रिकी
3. दूर संवेदी 4. पर्यावरण भू–विज्ञान

भू–जल विज्ञान (Hydrogeology)

परिभाषा

भूमिगत जल के वैज्ञानिक अध्ययन को भू–जल विज्ञान कहा जाता है। किसी भी भू–गर्भीय परत के मध्य स्थित खाली स्थानों (voids) में पाए जाने वाले जल को भू–जल कहते है। अगर समस्त खाली स्थान पूर्ण रूप से भू–जल से भरे हुए हो तो उसे जल–संतृप्त क्षेत्र (saturated zone) कहते है तथा इसकी विपरीत परिस्थिति को जल–असंतृप्त क्षेत्र (unsaturated zone) कहा जाता हैं। सामान्यतः जल–असंतृप्त क्षेत्र, जल–संतृप्त क्षेत्र की ऊपरी सतह के रूप में मिलता हैं। इन दोनों क्षेत्रों को विभाजित करने वाले तल को " भू–जल स्तर" कहा जाता है।

जल चक्र (Water Cycle)

भू–जल या भौमिकी जल पृथ्वी के जल चक्र का एक अहम् हिस्सा है जिसे भू–जलीय चक्र भी कहा जाता है। चित्र 9.1 में पृथ्वी के जल चक्र को दर्शाया गया है।

पृथ्वी की ऊपरी परत पर्पटी (crust) में ऐसी संरचनाएं पायी जाती है जो भू–जल को संग्रहित और परिवहन करने का कार्य करती है। जल इन शिलाओं में सतह से या फिर तालाबों, पोखरों, झीलों, आदि के माध्यम से प्रवेश करता है। सतही जल शिलाओं में प्रवेश करने के पश्चात् भौमिक जल का रूप ले लेता है और गुरूत्वाकर्षण बल की सहायता से ढाल की तरफ वाली दिशा में परिवहन करता है। ऐसी शिलाएं जो भू–जल का संग्रहण व परिवहन करती है वे भौमिक जल का स्रोत या जलभृत (acquifer) कहलाती है।

भौमिक जल परिवहन के पश्चात् आन्तरिक संरचना के गुणों के आधार पर धाराओं, नदियों या झरनों के रूप में पृथ्वी की सतह पर प्रस्फुटित होता है। झरनों के रूप में पाया जाने वाला जल

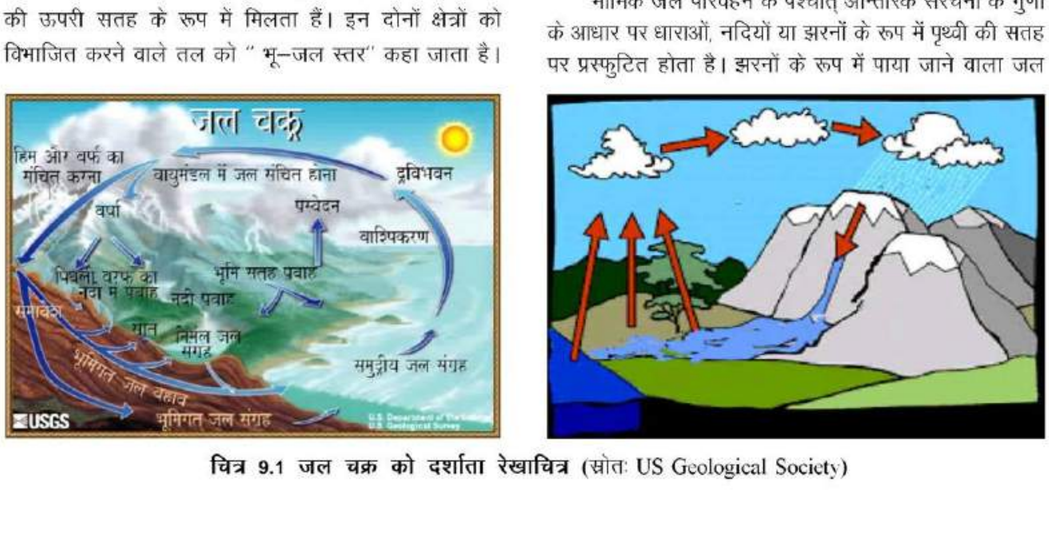

चित्र 9.1 जल चक्र को दर्शाता रेखाचित्र (स्रोतः US Geological Society)

प्रस्फुटित भूगर्भ जल का एक प्रमुख हिस्सा होता है जो नदियों में लगातार बहता है या झीलों में भरा रहता है।

नदियों से बहकर जाने वाला जल समुद्र में मिल जाता है। तालाबों, झीलों व समुद्र से जल वाष्पीकृत (evaporate) होकर वायुमंडल (atmosphere) में चला जाता है। कुछ भू–जल पृथ्वी की ऊपरी सतह से पेड़–पौधों द्वारा ट्रांसपिरेशन (transpiration) द्वारा भी वायुमंडल में समाहित हो जाता है। वायुमंडल में जल की बूंदों से बादल का निर्माण होता है जिसे कंडेंसेशन (condensation) कहते है। बादल से वर्षा पुनः जल को पृथ्वी की सतह पर पहुंचाती है और इस प्रकार जल चक्र पूर्ण होता है। भौमिक जल की आपूर्ति, परिवहन व रिसाव को जल चक्र का प्रमुख हिस्सा माना जाता है। भौमिक जल में जल चक्र के साथ–साथ अन्य स्रोत भी महत्वपूर्ण है। समस्त स्रोतों से प्राप्त भू–जल परिवहन के दौरान आपस में मिलकर शैलों में जल मात्रा का निर्धारण करते है। इन समस्त स्रोतों का आपस में सहसंबंध है। भू–जल चक्र में निम्नलिखित सभी भू–जल के प्रकार महत्वपूर्ण है।

1. वायुमंडलीय स्रोत से प्राप्त भू–जल को मिटियोरिक जल (meteoric water) कहा जाता है।
2. जो जल शिलाओं के भीतर शिला के जन्म के साथ पाया जाता है और वायुमंडल के प्रभाव में नहीं होता है उसे सहजात जल (connate water) कहा जाता है।
3. मैग्मा से प्राप्त जल को मैग्मेटिक जल (magmatic water) कहा जाता है। अधिक गहराई में मैग्मा के स्रोत से प्राप्त जल को वितलीय (plutonic) जल व कम गहराई के ज्वालामुखी स्रोत से प्राप्त जल को ज्वालामुखी (volcanic) जल कहा जाता है।
4. कायान्त्रित जल (metamorphic water) कायान्त्रण (metamorphism) की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त होता है।

समस्त भू–जल जो पूर्व में जलमंडल (hydrosphere) का भाग नहीं रहें हो उन्हें नवीन जल (juvenile water or new water) कहा जाता है।

भू–जल विवरण

भू–जल विवरण के आधार को समझने के लिए कुछ तकनीकी शब्दों का उपयोग भू–जल विज्ञान में प्रायः किया जाता है जिन्हें प्रारम्भ में समझना आवश्यक है।

1. **जलभृत** (Acquifer): एक ऐसी भूगर्भीय संरचना को जलभृत कहा जाता है जिसमें पानी का संचय व परिवहन होता है। इस संचित भूगर्भीय जल से कुओं व झरनों में पानी संचालित होता है।
2. **एक्वीक्लुयड** (Acquiclude): एक ऐसी जल–संतृप्त शैलीय संरचना है जो संरन्ध्री तो है परन्तु अप्रवेश्य (impermeable) होती है।
3. **एक्वीफ्यूज़** (Aquifuge): एक ऐसी शैलीय संरचना होती है जो अप्रवेश्य होती है और साथ ही अपरागम्य होते हुए लगभग जल रहित रहती है।
4. **एक्वीटार्ड** (Acquitard): एक ऐसी शैलीय संरचना जो छिद्रयुक्त तो है पर अपरागम्य है और जिसकी वजह से पानी ग्रहण करने की क्षमता कम होती है।

भू–जल विवरण को जमीन की सतह से गहराई के आधार पर दो क्षेत्रों में बांटा गया है (चित्र 9.2)।

1. ऐरेशन का क्षेत्र (Zone of aeration)
2. संतृप्ती का क्षेत्र (Zone of saturation)

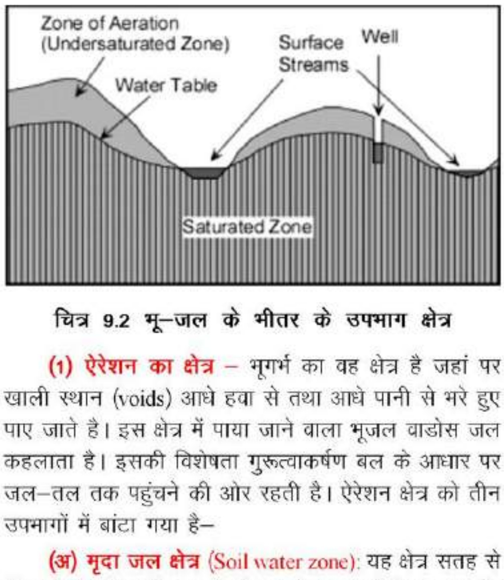

चित्र 9.2 भू–जल के भीतर के उपभाग क्षेत्र

(1) ऐरेशन का क्षेत्र – भूगर्भ का वह क्षेत्र है जहां पर खाली स्थान (voids) आधे हवा से तथा आधे पानी से भरे हुए पाए जाते है। इस क्षेत्र में पाया जाने वाला भूजल वाडोस जल कहलाता है। इसकी विशेषता गुरूत्वाकर्षण बल के आधार पर जल–तल तक पहुंचने की ओर रहती है। ऐरेशन क्षेत्र को तीन उपभागों में बांटा गया है–

(अ) मृदा जल क्षेत्र (Soil water zone): यह क्षेत्र सतह से लेकर पेड़ों की जड़ों तक के फैलाव क्षेत्र तक सीमित रहता है। इस क्षेत्र में स्थित भूजल से वनस्पति जल ग्रहण करती है। इसकी गहराई वनस्पति के प्रकार पर निर्भर रहती है। भू–जल मृदा कणों के आसपास पतली झिल्ली के रूप में पाया जाता है जिसे हाइग्रोस्कोपिक जल (hygroscopic water) कहा जाता है।

(ब) मध्य वाडोस क्षेत्र (Intermediate vadose zone): यह क्षेत्र मृदा जल क्षेत्र के ठीक नीचे से शुरू होता है। यहां पर भू–जल मोटे मृदा कणों तथा शैलीय कणों के आसपास एक अंगूठी (ring) का स्वरूप बनाकर चिपके हुए पाए जाते है। इस प्रकार की स्थिति पृष्ठ–तनाव (surface tension) के कारण संभव हो पाती है। इसे पेलिक्यूलर जल (pellicular water)

कहते है। इसकी मोटाई कुछ मीटर से लेकर 100 मी तक होती है। इस क्षेत्र में भू–जल शैलीय कणों से बंधा हुआ रहता है।

(स) कैपेलरी क्षेत्र (Capillary Zone): यह ऐरेशन क्षेत्र का सबसे निचला क्षेत्र है। यहां पर भूजल कैपेलरी ट्यूब के रूप में पाया जाता है। पृष्ठ–तनाव के कारण भू–जल गुरूत्वाकर्षण से विपरीत नीचे से ऊपर की ओर अग्रेषित रहता है। इस जोन के ठीक नीचे संतृप्ति क्षेत्र है जिसकी वजह से इस क्षेत्र में जल की आपूर्ति बनी रहती है।

(2) संतृप्ति का क्षेत्र – यह ऐसा भूगर्भीय क्षेत्र है जहां पर भू–जल समस्त खाली स्थानों को पूर्ण रूप से संतृप्त कर देता है। इस क्षेत्र और ऐरेशन क्षेत्र की सीमा को जल स्तर (water table) भी कहा जाता है। किसी भी शैलीय संरचना में कितना जल समाहित हो सकता है उसे उपलब्ध जल (available water) कहा जाता है। यह उस शैल की भू–जल क्षमता (water capacity) को भी दर्शाता है। किसी भी शिला में कितना जल संचित रह सकता है उसे "स्पेसेफिक रिटेंशन" (specific retention S_R) कहा जाता है।

$$S_R = W_R/V$$

जहां पर W_R = संचित जल का आयतन और

V = शैल का आयतन

इसी प्रकार से शिला के जल प्रदान करने की क्षमता को "स्पेसेफिक यिल्ड" (specific yield S_Y) कहा जाता है।

$$S_Y = W_Y/V$$

जहां पर W_Y = परिवहन जल का आयतन (volume of water drained) और

V = शैल का आयतन

शैलों के भूजलीय गुण

शैलों के भूजलीय गुणों को शैलों के दृढ़ीकरण (consolidation) के आधार पर अध्ययन किया जाता है। प्रायः अच्छे जलभृत अदृढ़ीकृत शैलों, जैसे की जलोढ निक्षेपों (alluvial deposits) में मिलते है। दृढ़ीकृत शैलों (consolidated rocks) की श्रेणी में बालुकाश्म (sandstone), चूना पत्थर (limestone) व ज्वालमुखी शैलों (volcanic rocks) को अच्छा जलभृत माना गया है।

(अ) जलोढ निक्षेप – जलोढ निक्षेप में ग्रेवल व रेत के जलभृत होते है। ऐसे जलोढ निक्षेप, जो कि मुख्य जल धारा के नीचे पाए जाते है, उनमें भूजल प्रचुर मात्रा में मिलता है। रिक्त जलोढ निक्षेप (abandoned alluvial deposits) उन जलधारा क्षेत्रों में मिलते हैं जहां पर सतही तौर पर जलधारा लुप्त है, परन्तु भीतर प्रचुर भूजल उपलब्ध है। समतल भूमि (plains) के जलोढ निक्षेप ग्रेवल व रेत के संस्तरों से निर्मित होते है जिनमें भूजल की प्राप्ति सीमित होती है। पर्वतों के मध्य की खाईयों (intermontane valleys) में अलग–अलग छोटे द्रोणी (basin) का निर्माण होता है और इनमें भूजल प्रचुर होता है परन्तु लगातार परिवहन होने से भूजल की उपलब्धता में कमी बनी रहती है।

(ब) बालुकाश्म (sandstone) एंव संगुटिकाश्म (conglomerate) – इन दोनों प्रकार की अवसादी शैलों में छिद्रों की संख्या अच्छी रहती है परन्तु इनके कणों को आपस में जोड़ने वाला सीमेन्ट कण छिद्रों को कम कर देता है। बालुकाश्म में पाए जाने वाले संधि (Joints) अच्छे जलभृत के कारक है।

(स) चूना पत्थर (Limestone) – लाइमस्टोन में बनावट के आधार पर जलभृत का आकलन किया जाता हैं। चूना पत्थर में दृढ़ीकरण के आधार पर घनत्व, छिद्रों की संरचना व प्रवेश्यता अच्छे जलभृत होने का निर्धारण करती है। चूना पत्थर घुलनशील होता है इसलिए इनमे आतंरिक रूप से गुफाएं व भूजल के विशाल भंडार पाए जाते है। बड़े झरने प्रायः चूनापत्थर में पाए जाते है। चूना पत्थर के अंदर पाए जाने वाले भूजल में प्रायः कैल्शियम की अधिकता पाई जाती है।

(द) ज्वालामुखी शैल– इस प्रकार की शैलों में प्रवेश्यता (permeability) अधिक पायी जाती है। सतही स्तर पर इन चट्टानों में लेंस या आंख के आकार के खाली स्थान (cavities) युक्त संरचनाएं होती है जो कि जल संग्रहण में सहायक होती है। प्रायः यह सरंचनाएं भीतर से आपस में जुड़ी हुई रहती है जिसकी वजह से पानी का बहाव आन्तरिक रूप से व्यापक क्षेत्र मे फैला रहता है। लावा ट्यूब (नली), क्रेक, फिशर, वेसिकल्स, भ्रंश आदि संरचनाएं इन चट्टानों में प्रायः पायी जाती है जो कि भूजल भंडारण व परिवहन दोनों में सहायक होती है।

(इ) आग्नेय व कायन्त्रित चट्टाने– यह दोनों चट्टानें अच्छे जलभृत की श्रेणी में नहीं आती हैं। इनकी बनावट अत्यधिक दृढ़ीकृत होती है। इसलिए इनमें छिद्रों की मात्रा काफी कम होती है। सैकण्डरी संरचनाओं की वजह से इनमें पाए जाने वाले संरचनात्मक परिवर्तन के कारण इनमें भूजल की मात्रा सीमित रहती है। ऐसी संरचनाएं प्रायः घरेलू उपयोग के भूजल उपलब्धता तक सीमित है।

(ई) पंकाश्म (mudstone) व गाद प्रस्तर (siltstone/claystone) – इन दोनों अवसादी चट्टानों में छिद्रों की मात्रा तो अधिक रहती है पर अच्छी तरह से दृढ़ीकृत रहने के कारण इनमें अप्रवेश्यता सर्वाधिक रहती है जिसकी वजह से भूजल की उपलब्धता घरेलू उपयोग तक सीमित मानी गयी है। इनमें जो कुएं खोदे जाते है वे प्रायः कम गहराई और चौड़े व्यास वाले होते है। अगर गाद प्रस्तर और संगुटिकाश्म साथ–साथ मिलते है तो भूजल की उपलब्धता बढ़ जाती है।

भू–अभियांत्रिकी (Engineering Geology)

परिभाषा एवं महत्व

अभियांत्रिकी (Engineering) के क्षेत्र में भू–विज्ञान के विभिन्न प्रकार के योगदानों के वैज्ञानिकी अध्ययन को भू–अभियांत्रिकी कहा जाता है। भू–विज्ञान व अभियांत्रिकी का गहरा संबंध है तथा इसकी उपादेयता एक दूसरे पर निर्भर है। भू–विज्ञान के ज्ञान से खनिजों, शैलों के उपयोग तथा मात्रा का पता चलता है जिसका व्यावहारिक उपयोग अभियांत्रिक की विभिन्न शाखाओं में किया जाता है। बांध, सड़क, पुल, रेल्वे लाइन, सुरंग, मकान, व अन्य सिविल अभियांत्रिकी के क्षेत्रों में भू–विज्ञान आधारित जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी गयी है। भवन निर्माण में चट्टानों का उपयोग, उनकी भार ढोने की क्षमता व ताकत पर निर्भर रहता है। चट्टानों का आभियांत्रिकी परियोजना में उपयोग छिद्रों की संख्या, घनत्व, अपघर्षण, प्रतिबल आदि के आधार पर का निर्धारित किया जाता है। नगर नियोजन (town planning) में भी भू–विज्ञान का अहम योगदान होता है। बहुमंजिला इमारतों के निर्माण में पृथ्वी के भूकम्पीय क्षेत्रों की जानकारी का होना महत्वपूर्ण माना जाता है। पृथ्वी की आंतरिक संरचनाओं का भू–भौतिकीय अध्ययन पृथ्वी के सतह पर होने वाले निर्माणों के बारे में प्रांरभिक जानकारी प्रदान करता है।

अभियांत्रिकी परियोजनाओं में भू–वैज्ञानिक का महत्व

भू–वैज्ञानिक भू–विज्ञान के अध्ययन से विभिन्न प्रकार के अभियांत्रिकी कार्यों में अहम् भूमिका निभाता है। भू–विज्ञान की जानकारियां निम्न अभियांत्रिकी के क्षेत्रों में काम आती है–

(अ) भवन निर्माण – इमारती पत्थर विशेष भौतिक गुणों के आधार पर भवन निर्माण के काम में लिया जाता है। इमारती पत्थर को उपयोग में लेने से पूर्व उसे विशेष आकार में काटा (dress) जाता है जिससे कि निश्चित आकार की पट्टियों (slab) का कम से कम नुकसान कर अधिकतम उपयोग लिया जा सकें। मजबूत, कठोर, तथा संस्तरित अवसादी चट्टानों का भवन–निर्माण में विशेष रूप से प्रयोग में लिया जाता है। कायान्तित तथा आग्नेय शैलों को तोड़ना कठिन होता है जिसके लिए नवीन तकनीकों का उपयोग किया जाता है जो महंगा होता है। इमारती पत्थरों का चुनाव कठोरता, मजबूती, स्थिरता, सुन्दरता, तथा मूल्य को ध्यान में रख कर करना चाहिए। शैलों को आपस में मजबूती से जोड़ने के लिए सीमेन्ट का उपयोग किया जाता है। सीमेन्ट का निर्माण भी चूना पत्थर से होता है। चट्टानें प्रायः संरन्ध्रता युक्त होती है इसलिए सीमेन्ट का उपयोग अत्यावश्यक होता है। भारत में कुछ स्थानों का इमारती पत्थर विशेष रूप से प्रसिद्ध है। राजस्थान के सेंडस्टोन, लाइमस्टोन तथा मार्बल, दक्षिण भारत के ग्रेनाइट, चारनोकाइट, नीज, आदि तथा मध्य भारत के चूना पत्थर सर्वाधिक रूप से इमारत निर्माण के क्षेत्र में विश्व प्रसिद्व है। ताजमहल, विक्टोरिया मेमोरियल, गेट वे ऑफ इंडिया, इंडिया गेट, लाल किला, संसद भवन आदि इमारतों में इनका बखूबी उपयोग किया गया है। वर्तमान में अनेक शहरों में बन रही खूबसूरत बहुमंजिला इमारतों में भी इनका उपयोग किया जा रहा है।

(ब) सड़क निर्माण – सड़क निर्माण में चट्टानों को बारिक तोड़कर छोटे आकार की गिट्टी का उपयोग प्रायः हर जगह किया जाता है। इसके लिए एक पलवेराइजर (pulverizer) मशीन का उपयोग किया जाता है जो पत्थरों को अलग–अलग आकार के टुकड़ों में विभाजित कर देती है। सड़क निर्माण में बेसाल्ट, डोलोमाइट आदि चट्टानों का उपयोग किया जाता है। सड़क निर्माण में पत्थर का चुनाव निम्न गुणों के आधार पर किया जाता है–

(अ) कम अपरदन

(ब) अधिक कठोरता व मजबूती

(स) अधिक सीमेन्टिग गुण।

सड़कों की भुजाएं बनाने में लाल रंग की मिट्टी तथा मृणमय पदार्थ प्रयोग में लाये जाते है, परन्तु यह जल्दी ही अपरदित हो जाते है। बालू को अकेले प्रयोग में लेना ठीक नहीं है क्योंकि इसमें संयोजन के गुण नहीं होते है।

(स) पहाड़ी ढाल तथा कटाव– पहाड़ी क्षेत्रों में ढाल के कारण से कटाव प्रायः देखे जाते है। तीव्र ढाल पर प्रायः भूस्खलन देखा जा सकता है। इनको रोकने के लिए भी भू–विज्ञान के ज्ञान को व्यावहारिक रूप से उपयोग में लिया जाता है। भू–स्खलन का प्रमुख कारण गुरूत्वाकर्षण बल है जो संचरण (flowage), फिसलन (sliding) तथा धंसने (subsidence) के रूप में दिखाई देता है (चित्र 9.3 अ,ब,स)।

वर्षा ऋतु में भूस्खलन ज्यादा दिखाई देता है जिसको उचित लेप लगाकर रोका जा सकता है। कभी–कभी अचानक भारी मात्रा में पत्थर गिरकर बिखर जाते है और सर्वाधिक नुकसान पहुंचाते है। गिरे हुए भार को साफ कर शेष पहाड़ी ढाल को बेंच–नुमा आकृति में काटकर निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(1) ढाल तथा कटाव पर चट्टानों की अवस्था।

(2) क्षेत्रीय भौमिकी अवस्था।

(3) भौमिकी जल–तल की अवस्था।

प्रायः भूस्खलन के साथ–साथ नई दरारें तथा संधियों का उद्गम होता है। जिन्हें ग्राउटिंग (grouting) तथा अन्य विधियों द्वारा भरकर स्थायी बनाया जाता है। नवीन दीवार का निर्माण छोटे–छोटे पत्थरों को लोहे की जाली से बांधकर किया जा

चित्र 9.3 (अ) संचरण (flowage), **(ब) फिसलन** (sliding), **(स) धंसने** (subsidence)

सकता है। ढाल को कम करके भी कटाव की गति को कम किया जा सकता है। चूना पत्थर से युक्त चट्टानों में निरन्तर घुलनशीलता बनी रहती है इसलिए इनमें कटाव की संभावना हमेशा बनी रहती है। इन चट्टानों में पानी का उचित निकास मार्ग बनाया जाता है। संस्तरित चट्टानों में संस्तर के समान्तर ही मजबूत सतह का निर्माण किया जाता है। नति की दिशा में ढाल का निर्माण कर भूस्खलन को कम किया सकता है। कुछ अवस्थाओं में उन्नत कोण पर ढाल बनाए जाते है।

(द) पुल निर्माण– पुल निर्माण का कार्य सड़क तथा रेलवे–ट्रेक निर्माण (पटरी बिछाने) में किया जाता है। इस हेतु निम्न अवस्थाएं उपयुक्त मानी गयी है–

(1) नदी के तल में कठोर चट्टानों का होना आवश्यक है।

(2) नदी के दोनों पाटों को मजबूत होना चाहिए ताकि कटाव कम हो।

(3) नदी के पास के ढाल क्षेत्रों की चट्टानों से पुल के स्तम्भों को खतरा कम से कम हो।

(4) पुल के स्तम्भ तथा नींव मजबूत हो।

(5) पुल धाराओं की लहरों से होने वाले कटाव को झेलने में सक्षम होना चाहिए।

पुल बनाने से पूर्व स्तम्भ खड़े करने के स्थान पर से मुलायम मिट्टी व धाराओं द्वारा बहाकर लाये गये कंकड पत्थर पूर्ण रूप से साफ कर हटा देने चाहिए। तल की चट्टानों की दरारों को सीमेन्ट व ग्राउटिंग द्वारा पुनः मजबूत किया जाना चाहिए। पुल के नीचे की चट्टानों का आकार, आकृति, संरचना, मजबूती व प्रकार का सम्पूर्ण अध्ययन होना चाहिए। चट्टानों के संस्तरों की गहराई व पारस्परिक मोटाई से पुल के खम्भों की मोटाई का निर्धारण किया जाना चाहिए। पुलों को जलरोधी बनाने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि पानी के बहाव से उन्हें खतरा नहीं होता। अवसादी शैलों में बालूकाश्म, ग्रिट, संगुटिकाश्म, संकोणाश्म आदि को पुल के लिए उपयुक्त माना गया है। मृण–शैलों को भी अधिक उपयोगी नहीं माना गया हैं। पुल बनाने में नवीन भ्रंशों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए और इन्हें मजबूती से पाटना चाहिए। पुल को प्रायः नदी के उदगम के पास नहीं बनाना चाहिए क्योंकि वहां पर अधिक धारा प्रवाह के कारण पुल टूटने की संभावना अधिक रहती है।

(इ) सुरंग (Tunnel) – सुरंग धरातल के नीचे बनाया गया मार्ग है जिसमें ऊपर की चट्टानों एवं मृदा में किसी प्रकार का बदलाव नहीं होता है। सुरंग बनाने के कई उद्देश्य होते है जिनमें प्रमुख सड़क मार्ग, रेलवे–ट्रेक का मार्ग, जल–परिवहन का मार्ग आदि है। सुरंगें शैलों की कठोरता, आकार तथा संरचना पर निर्भर करती है। स्थूल शैलों में सुरंगों का निर्माण सुरक्षित परन्तु कठिन होता है। सूखी चट्टानों को तोड़ना आसान है परन्तु जहां पानी का रिसाव होता है उन स्थानों पर सुरंग निर्माण कठिन होता है। इसलिए सुरंग बनाने के लिए भू–जल स्तर की विस्तृत जानकारी का अध्ययन आवश्यक है।

चित्र 9.4 चौरस व गोलाकार सुरंगें

सुंरग निर्माण में निम्न भूगर्भीय जांचे करना आवश्यक है।

(1) सुरंग के रास्ते का चुनाव व दिशा– सुरंग हमेशा दो बिन्दुओं (स्थानों) के मध्य बनाई जाती है। इसलिए दोनों बिन्दुओं के मध्य की चट्टानों की समस्त जानकारी प्राप्त कर सही रास्ते का चुनाव व दिशा तय की जाती है।

(2) सुरंग खोदने का तरीका– सुरंग खोदने में काफी समय लगता है और व्यय आता है इसलिए सबसे आसान व सुरक्षित तरीके को अपनाने का प्रयास करना चाहिए। सुरंग के मार्ग में आने वाली भिन्न प्रकार की चट्टानों और उनकी सरंचना के आधार पर खुदाई में तदनुसार परिवर्तन करना चाहिए।

(3) सुरंग की रूपरेखा– सुरंग की रूपरेखा में सुरंग की लंबाई व आकार का पूर्ण निर्धारण किया जाना आवश्यक होता है। सुरंग गोलाकार, डी–आकार, आयताकार और घोड़े के तलवे के आकार की हो सकती है (चित्र 9.4)।

(4) सुरंग की स्थिरता व व्यय का अनुमान– सुरंग का स्थिर होना अतिआवश्यक है। बिना किसी सहायता के सुरंग चारों ओर से सुरक्षित रहनी चाहिए। सुरंग के निर्माण में होने वाला व्यय इस बात पर निर्भर करेगा कि उसमे किस प्रकार से क्या–क्या परिवर्तन किए गए है।

(5) पर्यावरण में खतरे – सुरंग निर्माण से उस स्थल के पर्यावरण में परिवर्तन आने की संभावना बन जाती है। यह परिवर्तन सीमा से अधिक नहीं होने चाहिए। विशेष रूप से सुरंग बनने के बाद पानी के प्राकृतिक बहाव में बदलाव न हो इसका पूरा प्रयास रहना चाहिए।

भू–वैज्ञानिक को सुरंग के समय उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं का बारीकी से वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिए। विशेष रूप से उन चट्टानों का अध्ययन करना चाहिए जिनमें संरचनात्मक बदलाव की संभावना अधिक रहती है। सुरंग की छतों व दीवारों की सन्धि, रन्ध्र, विदर आदि से पानी रिसना आम समस्या है इसलिए शैलों की पारगम्यता और भूजल तल की अवस्था के आधार पर निर्माण किया जाता है। इन समस्याओं का एक हल ग्राउटिंग भी हैं।

(ई) बांध तथा जलाशय – बांध एक प्रकार का ठोस अवरोध है जिसका निर्माण नदी घाटी क्षेत्र में पानी के बहाव को रोकने के लिए किया जाता है। रोके गए पानी के इकठ्ठा होने पर जलाशय का निर्माण होता है (चित्र 9.5)। इस जलाशय के जल को विभिन्न कार्यों में उपयोग में लिया जाता है। जलाशय में जल के भराव से आसपास के क्षेत्र का जलस्तर भी बढ़ जाता है।

चित्र 9.5 अर्धगोलाकार बांध व जलाशय

बांधों तथा जलाशयों के निर्माण में निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना महत्वपूर्ण है–

(1) बांध की नींव मजबूत व उचित तरीके से ठोसीकृत की जानी चाहिए।

(2) जलाशय मे सिल्ट (silt) की मात्रा को सीमित किया जाना चाहिए।

(3) अतिरिक्त जल के निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) एक पतली नवधारा होनी चाहिए जिसे बांधा जा सके।

(5) संरचना के लिए आवश्यक सामग्री की निकट में उपलब्धता होनी चाहिए।

कोई भी जलाशय पूर्ण रूप से जलरोधी नहीं बनाया जा सकता। भू–वैज्ञानिक यह भी ध्यान रखता है कि बांध की नींव की शिलाओं तथा दिवारों में से रिसाव कम से कम होने चाहिए। निस्पंदन की मात्रा के अनुसार जलाशय से जल की मात्रा निकल जाती है।

निम्न भू–वैज्ञानिकी पहलुओं का विशेष ध्यानपूर्वक अध्ययन कर बांध तथा जलाशय का निर्माण करना चाहिए–

(1) बांध बनने पर एकत्रित होने वाली जलराशि का तल की चट्टानों पर जो दबाव बनेगा उसका सही आकलन करना।

(2) बांध के निर्माण में काम आने वाली समस्त सामग्री की गुणवत्ता की जांच निरन्तर संपादित करना।

(3) बांध से होने वाली पानी की निकासी की मात्रा का ऋतु अनुसार पूर्वानुमान करना।

(4) निकासी से होने वाले प्रभावों का आकलन।

(5) बांध के निर्माण में परिस्थिति व क्षेत्र के गुणों को प्राथमिकता देना। उदाहरण के लिए बांध स्थल की स्थलाकृति (topography) का अध्ययन कर बांध के प्रकार का निर्धारण करना।

(6) चट्टानों की परागम्यता, छिद्रों की मात्रा, प्रवेश्यता, घनत्व, प्रकार आदि भू–वैज्ञानिक पहलुओं का अध्ययन।

(7) भूकम्प के प्रकार, आवृति व संभावित नुकसान का पूर्वानुमान कर भूकम्प–रोधी निर्माण बनाना।

भू–अभियांत्रिकी परियोजना में स्थल सुधार

भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में भू–वैज्ञानिक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है परियोजना स्थल को भू–वैज्ञानिकी की दृष्टि से तैयार कर सुधार करना। इनके लिए निम्न प्रकार के कार्य प्रायः संपादित किए जाते है।

(1) ग्राउटिंग (Grouting) - ग्राउटिंग का कार्य अधिक दाब पर सीमेन्ट युक्त पदार्थ को चट्टानों की दरारों में प्रवेश करवाने का होता है (चित्र 9.6)। इसके लिए भू–वैज्ञानिक को परियोजना स्थल की चट्टानों का संरचनात्मक अध्ययन शुरूआत में ही कर लेना चाहिए।

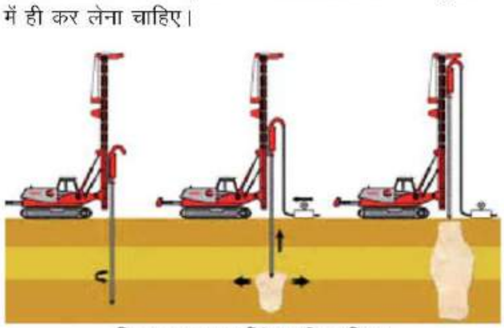

चित्र 9.6 ग्राउटिंग की प्रकिया

(2) बोल्टिंग (Bolting) - इस प्रकिया में फ्रेक्चर युक्त (अर्थात भीतर से टूटी हुई) चट्टानों को जोड़ने का कार्य बड़े आकार के स्टील के बोल्ट द्वारा किया जाता है (चित्र 9.7)। यह ठीक उसी प्रकार की प्रकिया है जिसमें की इन्सान की टूटी हुई हड्डी को चिकित्सक बोल्ट द्वारा जोड़ता है।

चित्र 9.7 सुंरग व सड़क निर्माण में बोल्टिंग द्वारा दीवार का स्थिरीकरण

(3) मृदा–स्थिरिकरण– मृदा–स्थिरीकरण में मृदा की भार उठाने की क्षमता का विकास किया जाता हैं। इस हेतु मृदा का भू–वैज्ञानिक अध्ययन कर उसमें उचित मात्रा में सीमेन्ट मिलाकर (cement stabilization) या एसफाल्ट (asphalt) मिलाकर (bituminous stabilization) किया जाता है।

दूर संवेदी (Remote Sensing)

परिभाषा

दूर संवेदन (remote sensing) एक प्रकार का वैज्ञानिकी अध्ययन है जिसके अन्तर्गत किसी वस्तु, क्षेत्रफल या घटनाक्रम की जानकारी वस्तु, क्षेत्रफल या घटनाक्रम से संपर्क में आए बगैर आंकड़े और तथ्य के रूप में एकत्रित की जाती है। इस प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन में उपग्रह (satellite) उपयोग किया जाता है। उपग्रह में विशेष प्रकार के बोधक (sensor) लगे रहते है जो भिन्न–भिन्न प्रकार की जानकारी अलग–अलग तरीके से एकत्र करते है। उपग्रह पृथ्वी के वायुमंडल की ऊपरी सतह या फिर अतंरिक्ष में स्थित किए जाते है जहां पर जानकारी विद्युतचुम्बकीय (electromagnetic) तरंगों के रूप में पहुंचती है। उपग्रह में स्थित बोधक इन किरणों को पृथ्वी पर परावर्तित करते है जिन्हें उचित माध्यमों द्वारा कम्प्यूटर की सहायता से आकलन कर अध्ययन किया जाता है (चित्र 9.8)। उपग्रह के अतिरिक्त वायुयान से भी अधिक ऊंचाई से एरियल फोटोग्राफ खींच कर डाटा एकत्रित किया जाता है।

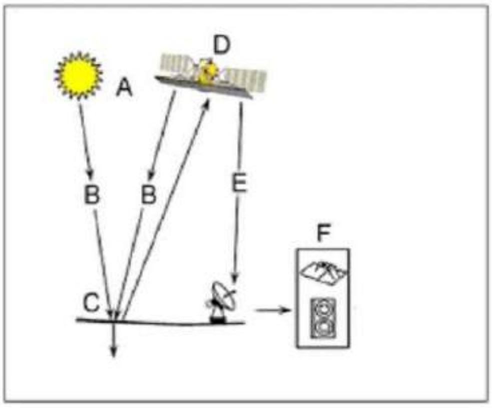

चित्र 9.8 दूर संवेदन प्रक्रिया

दूर संवेदन का उपयोग भू–विज्ञान में खनिज क्षेत्रों की पहचान बनाने में किया जाता है। शैलों का क्षेत्रीय अध्ययन उपग्रह से ली गयी तस्वीरों व चित्रों के आधार पर किया जाता है। भू–जल की क्षेत्रीय जल निकासी व्यवस्था (drainage pattern) का अध्ययन भी एरियल फोटोग्राफ की सहायता से किया जा सकता है।

एरियल फोटोग्राफ व इमेजरी

(अ) परिभाषा– एरियल फोटोग्राफ या वायव फोटोग्राफ हवाई जहाज से उड़ते वक्त लिया जाता है। इस प्रकार के फोटोग्राफ में व्यय अधिक होता है। इसमें हवाई यात्रा का पूर्व–नियोजन किया जाता है। एरियल फोटोग्राफ को एरियल कैमरे की सहायता से अनन्त पर फोकस कर चित्र लिया जाता है (चित्र 9.9)। इस कैमरे में लैन्स का विभेदन (resolution) अत्यधिक तथा विरूपण (distortion) कम से कम होना चाहिए। लैन्स अंशशोधित (calibrated) होना चाहिए। कम्पन (vibration) न्यूनतम होने चाहिए। आधुनिक आंशिक कैमरे का शटर न्यूनतम अवधि 1/300 या 1/1000 या अधिक सेकण्ड तक खुलकर बन्द हो जाता है।

चित्र 9.9 भू संरचनाओं को दर्शाता एरियल फोटोग्राफ

इस प्रकार के कैमरे का तुलनात्मक द्वारक (Aperture) कुछ बड़ा होता है। एरियल फोटोग्राफी में उड्डयन नियोजन एक आवश्यक कार्य योजना होती है जिसमें सतत् फोटोग्राफी (अतिव्याप्ति) प्राप्त की जा सकती है। एरियल फोटोग्राफ में एक केन्द्रीय संदर्श (central perspective) होता है जबकि मानचित्र में एक समान्तर उर्ध्व दिशा (orthogonal projection) चित्र होता है। एरियल फोटोग्राफ का अध्ययन करने के लिए स्टिरियोस्कोप (stereoscope) का उपयोग किया जाता हैं।

इमेजरी उपग्रह द्वारा लिया गया चित्र है जिसमें भिन्न तरंगों के परास (band) को तरंग दैर्ध्य (wavelength) के आधार पर निर्मित किया जाता है। तरंगों के विधुतचुबंकीय स्पेक्ट्रम का अध्ययन व आकलन कर इमेजरी को FCC (False Coloured Composition) या अन्य प्रारूपों में तैयार किया जाता हैं।

(ब) महत्व – एरियल फोटोग्राफी व इमेजरी का महत्व भू–विज्ञान के क्षेत्र में कई प्रकार से किया जाने लगा है जिसकी वजह से भू–वैज्ञानिकों का महत्व बढ़ जाता है।

(1) चट्टानों में विभेदन का कार्य– कई चट्टानें

खनिज संगठन के आधार पर भिन्न प्रकार से किरणों को परावर्तित करती है। परावर्तन में भिन्नता का कारण खनिजों की क्रिस्टल रचना, कठोरता, बाइरेफरिनजेन्स, विभंग, विदलन आदि होता है। इनके अतिरिक्त चट्टानों का रसायनिक संगठन व खनिजों के प्रकार भी किरणों को भिन्न तरिकों से परावर्तित करने का कार्य करते है। दूर संवेदन में थीमेटीक मानचित्रक (Thematic Mapper TM) उपग्रह की सहायता से आग्नेय, अवसादी व कायान्त्रित चट्टानों में विभेदन कर मानचित्रों को तैयार किया जाता है।

(2) नदी–नालों व भू–आकृतियों का अध्ययन – एरियल फोटोग्राफ की सहायता से किसी भी स्थल की भू–आकृति का अध्ययन कर नदियों व नालों के बहाव दिशा क्षेत्रों का आकलन किया जा सकता है। पहाड़ों, घाटियों, वन क्षेत्रों, वनस्पति व मृदा के अध्ययन का कार्य व सीमांकन भी एरियल फोटोग्राफ की सहायता से त्वरित गति व अधिक कौशल से किया जा सकता है। वर्षा ऋतु में अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि व अल्पतृप्ति क्षेत्रों को चिन्हित करने में एरियल फोटोग्राफ का उपयोग किया जाता है।

(3) प्रवेश्य व अप्रवेश्य शिलाओं में विभेदन– दूर संवेदन द्वारा प्रवेश्य व अप्रवेश्य शिलाओं में विभेदन का कार्य किया जा सकता है। ऐसे दूर–संवेदी चित्रों को प्रयोगशालाओं में प्रक्रम (process) किया जाता है। इस प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के फिल्टर (परदों) का उपयोग किया जाता है ताकि चट्टानों में विभेदन घनत्व, कठोरता तथा छिद्रों की संख्या के आधार पर किया जा सके। TM 1+5/1-5 मानचित्रक में सोबेल 7 (SOBEL 7) फिल्टर का उपयोग कर प्रवेश्यता और अप्रवेश्यता में अंतर स्थापित किया जा सकता है।

(4) अपरदन (erosion) सूचक को ज्ञात करना– भूमि के अपरदन में चट्टानों के प्रकार मुख्य ज्ञातक रहते है। उपग्रह से प्राप्त डाटा और तथ्य (आंकड़े) उचित फिल्टर के उपयोग से चट्टानों का गठन (texture) ज्ञात किया जा सकता है। इस तथ्य के आधार पर मोटे व बारीक कणों वाली चट्टानों में विभेदन किया जा सकता है। मोटे कणों वाली चट्टानें अपरदन से ज्यादा प्रभावित होती है तथा इसके विपरीत बारीक कणों वाली चट्टानें अपरदन से कम प्रभावित होती है।

(5) भौमिकीय संरचना मानचित्रण– दूर संवेदन से क्षेत्रीय स्तर पर स्थलाकृति निर्माण में भौमिकीय मानचित्रण का कार्य किया जा सकता है। क्षेत्रीय स्तर पर पहाड़ों का निर्माण वलनाकार हो सकता है। ऐसी संरचनाओं को आसानी से एरियल फोटोग्राफी की सहायता से अध्ययन किया जा सकता है। वलनकृत संरचनाएं रेखीय या घुमावदार हो सकती है जो अपनति व अभिनति के रूप में स्पष्ट रूप से पहचानी जा सकती है। गुम्बद तथा द्रोणी संरचनाओं को दूर संवेदन द्वारा विभेदित किया जा सकता है।

दूर–संवेदी चित्रों के माध्यम से क्षेत्रीय स्तर की रेखीय संरचनाओं को मानचित्रित किया जाता है। इस तरह के चित्रण से भूकम्पीय क्षेत्रों को चिन्हित करने का कार्य भी किया जा सकता है। नदी के बहाव क्षेत्रों में समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों को भी दूर–संवेदन से अध्ययन कर चिन्हित किया जा सकता है। हिमनदों के स्थान परिवर्तन को विभिन्न ऋतुओं में दूर–संवेदन द्वारा अध्ययन किया जाता है। समुद्रीय किनारों (coastal areas) पर लहरों द्वारा किया गया अपरदन कार्य भी चित्रण कर मानचित्रित किया जा सकता है।

(6) भू–जल के स्त्रोतों का अध्ययन– दूर–संवेदन की प्रक्रिया से नए भू–जल स्रोतों का पता लगाया जा सकता है। ऐसे क्षेत्र जो बर्फीली परत से ढके होते है उनके अन्दर मीठे पानी के स्रोतों की जानकारी दूर–संवेदी किरणों से प्राप्त की जा सकती हैं। उपग्रह से प्राप्त चित्रों द्वारा जलीय क्षेत्रों का आकार, आकृति, ढंग, विस्तार व फैलाव को ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन के लिए विद्युतचुम्बकीय स्पेकट्रम का इन्फ्रारेड (Infrared- IR) बोधक काम में लाया जाता है।

भू–जल की मात्रा व गुणवत्ता का अध्ययन भी दूर–संवेदन की प्रक्रिया से किया जाता है। पानी में पायी जाने वाली अशुद्धता आसानी से पहचानी जा सकती है। इसके लिए दृश्य–बैंड (visible band) की किरणें सहायता करती है। भूगर्भीय जल तथा मृदा व वनस्पति के प्रकारों का अध्ययन साथ–साथ किया जा सकता है क्योंकि यह सभी आपस में जुड़े रहते है। वनस्पति के प्रकार मृदा के प्रकार पर निर्भर करते है और मृदा का निर्माण चट्टान पर निर्भर करता है। वन क्षेत्रों के प्रकार, फैलाव व विस्तार का आकलन भी दूर–संवेदन द्वारा किया जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में भी व्यापक रूप से दूर–संवेदन का उपयोग किया जाता है। फसलों की पैदावार का आकलन, फसलों पर मौसम व कीटों की खराबी का आकलन आदि कार्य भी इस प्रकार के अध्ययन से किये जाते है।

(7) समुद्रीय संसाधनों का आकलन– दूर–संवेदन की प्रक्रिया से भौमिक पर्यावरण का अध्ययन किया जा सकता है। समुद्र की सतह का तापमान, पानी का संगठन, समुद्रीय लहरों की ऊंचाई व क्लोरोफिल की मात्रा आदि का आकलन दूर–संवेदी प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। समुद्र के पानी में जैविक पैदावार के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। तेल उत्पादन करने वाले समुद्रीय क्षेत्रों में तेल के रिसाव को भी चिन्हित किया जा सकता है। कई अन्य प्रकार के समुद्रीय प्रदूषणों की पहचान भी दूर–संवेदन द्वारा की जा सकती है।

पर्यावरण भू–विज्ञान (Environmental Geology)

परिभाषा

पर्यावरण भू–विज्ञान, पृथ्वी व पर्यावरण के विभिन्न वैज्ञानिकी पहलुओं का, भू–वैज्ञानिकी अध्ययन है अर्थात् पर्यावरण से संबंधित उन समस्त पहलुओं का अध्ययन जिसमें भौमिकी कारकों को प्रमुख माना गया है। पर्यावरण भू–विज्ञान के अन्तर्गत भू–जल तथा मृदा के उपयोग एवं प्रदूषण का अध्ययन किया जाता है। भूकम्प व ज्वालामुखी जनित पर्यावरणीय नुकसान का आकलन, समुद्रीय तटों के पर्यावरण का अध्ययन और पहाड़ी क्षेत्रों में जमीन के धंसने के बारे में विस्तृत जानकारियों को एकत्रित कर अध्ययन किया जाता है। मनुष्य द्वारा खनिज प्राप्ति हेतु खदानों से जनित पर्यावरणीय क्षति का अध्ययन भी इसी में सम्मिलित है। उपर्युक्त समस्त पहलुओं का भू–विज्ञान से सहसंबंध ज्ञात कर पर्यावरण के अध्ययन को पर्यावरण भू–विज्ञान में रखा गया है।

भू–विज्ञान एवं पर्यावरण

भू–विज्ञान एवं पर्यावरण के सहसंबंध को मानव जनित व प्राकृतिक कारकों में विभाजित किया जा सकता है। मानव–जनित पर्यावरण से संबंधित कारक निम्न है–

(1) खदानों से जनित पर्यावरणीय प्रदूषण

(2) शहरीकरण से प्रभावित पर्यावरणीय प्रदूषण

(3) समुद्रीय क्षेत्रों की पर्यावरणीय क्षति

(4) रेडियोधर्मी (रेडियोएक्टिव) खनिजों, तेल रिसाव व अन्य खनिज जनित रोग।

प्राकृतिक कारक जो प्रदूषण का मुख्य कारण है और भू–विज्ञान से जुड़ें है, वे निम्न है–

(1) ज्वालामुखी से जनित राख व लावा का प्रदूषण

(2) समुद्र की सुनामी लहरों से पर्यावरणीय क्षति

(3) जमीन धंसने से पर्यावरणीय हानि

(4) नदियों में बाढ़ आने से पर्यावरणीय हानि

(5) भूकम्प आने से पर्यावरण में बदलाव

उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं का विवरण भू–विज्ञान के संदर्भ में निम्नानुसार है–

(1) मानव जनित पर्यावरणीय क्षति

(अ) खनन कार्यो से होने वाले पर्यावरणीय प्रभावों के आकलन का कार्य भू–वैज्ञानिक का होता है। खनन कार्यो के विकास में शुरू से लेकर खनिज दोहन तक के समस्त कार्यों की योजनाओं को पर्यावरण की दृष्टि से विकसित करने की जिम्मेदारी भी भू–विज्ञान में समाहित है। खान के विकास में पर्यावरणीय पहलू जैसे वृक्षारोपण, बारीक कणों को हवा में फैलने से रोकना, खदानों से निकलने वाले अप्रयुक्त पदार्थों का निश्चित स्थान पर संधारण, खनन के दौरान वाहनों के परिवहन से पर्यावरण को होने वाली क्षति तथा अन्य सभी प्रकार के पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले कारकों के विस्तृत अध्ययन व योजना बनाने के कार्यों का निष्पादन भू–वैज्ञानिकी पर्यावरण के अंतर्गत आता है। खनिज चूंकि प्राकृतिक उत्पाद है इसलिए प्रकृति से दोहन के समय इससे प्राकृतिक संतुलन को जो क्षति होती है उसको पुनःसंतुलित करने की वैज्ञानिक सोच बनाने व कार्यान्वित करने का कार्य भी भू–वैज्ञानिक करता है।

(ब) मौजूदा समय में अविरल शहरीकरण की प्रक्रिया को रोकना मुश्किल होता जा रहा है। इस हेतु जमीन के उपयोग की योजना (land use planning) के कार्य में भी भू–वैज्ञानिक का अहम् किरदार है। भू उपयोग परियोजना में जमीन की आंतरिक संरचना, चट्टानों का प्रकार व ढाल, मृदा के प्रकार, भूमि के भार सहने की क्षमता, शैलों में पानी ग्रहण करने की क्षमता, आदि महत्वपूर्ण है। शहरीकरण में इमारतों, उद्यानों, जलग्रहण क्षेत्रों आदि के विकास को भू–वैज्ञानिक पहलुओं के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए। वर्तमान में "स्मार्ट सीटी" के विकास पर देशभर में कार्ययोजना चल रही है जिसमें भू–वैज्ञानिक अहम् भूमिका निभाने में लिए सक्षम है। शहरी पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने के लिए शहर की जलनिकासी व्यवस्था (drainage pattern), सिवरेज पाइपलाइन को बिछाने के कार्य, बिजली के तारों को जमीनदोज़ करना, गैस पाइपलाइन को बिछाने आदि के कार्यों में जमीन के भीतर की जानकारी महत्वपूर्ण है इसलिए भू–वैज्ञानिकी सोच का होना भी अतिआवश्यक है।

(स) समुद्रीय तटों व समुद्रीय क्षेत्रों में विकास की अपार संभावनाओं को वर्तमान में प्रबलता के साथ विकसित किया जा रहा है। समुद्रीय तटों पर पर्यावरण को हानि न पहुंचे इस हेतु समुद्री तटों की बनावट, समुद्री लहरों (सूनामी) से होने वाले भौतिक व रसायनिक अपरदन आदि ऐसे क्षेत्र है जिनको ध्यान में रखकर बन्दरगाहों का विकास किया जाना चाहिए। बन्दरगाहों के समान्तर सड़कों का निर्माण परिवहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके लिए भू–वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित सोच से कार्यों को निष्पादित किया जा सकता है ताकि पर्यावरण को क्षति से बचाया जा सके। समुद्रीय क्षेत्रों में तेल रिसाव, समुद्रीय तल पर खनिज अन्वेषण व दोहन के कार्यो के दौरान इस बात की पर्याप्त संभावना रहती है कि वहां के स्थानीय पर्यावरण में बदलाव हो, इसलिए उस पर्यावरणीय बदलाव में संतुलन बिठाया जा सके इसके लिए भू–वैज्ञानिकी बारीकियों को ध्यान में रखकर योजनागत विकास किया जाता है।

(द) प्रकृति से कई प्रकार के खनिज प्राप्त होते है जिनके साथ कई प्रकार की सावधानियां बरतने की सख्त जरूरत होती है। विशेष रूप से रेडियोधर्मी खनिजों के खनन के दौरान रेडियोधर्मिता

से होने वाली क्षति के कारण भूवैज्ञानिकी सोच से खनन कार्य किया जाना चाहिए। ऐसी खदानों से निकलने वाला अपशिष्ट भी पर्यावरण को हानि पहुंचा सकता है और साथ ही खनन के क्षेत्र में कार्य करने वाले खननकर्मियों की सेहत को नुकसान पहुंचा सकता है। कई ऐसे खनन कार्य है जिनमें काम करने वाले खननकर्मी बीमार हो सकते है। उदाहरण के लिए एस्बेसटोस (asbestoes) खदान में कार्य करने वाले मजदूरों को फेफड़ों की एस्बेसटोसिस (asbestosis) बीमारी हो सकती है। सिलीकोसिस (silicosis) भी एक इसी प्रकार की एक बीमारी है जो कि धूल–भरी खदानों में कार्य करने वाले खननकर्मियों में प्रायः देखी जाती है। खननकर्मियों में इस प्रकार के रोग न हो इसके लिए भू–वैज्ञानिक खनन प्रक्रिया में पर्यावरणीय पहलुओं के बारे में औचित्यपूर्ण तरीके से सुझाव देकर क्षति को कम कर सकते है।

(2) प्राकृतिक असंतुलन से पर्यावरणीय क्षति

(अ) ज्वालामुखी की राख से होने वाले वायुप्रदूषण को नियंत्रित करने का कार्य विषम परिस्थितियों में किया जाता है। राख का तापमान अधिक होता है इसलिए उसको ज़मीन पर ठहरने के पश्चात् पानी के छिड़काव से कम किया जा सकता है। ज्वालामुखी के लावा के बहाव से कई क्षेत्र पूरी तरह से खत्म हो जाते है। इतना प्रयास अवश्य किया जा सकता है कि बहाव की दिशा को बदल कर मानवीय क्षति को कम किया जा सकें। ज्वालामुखी का फटना मनुष्य के हाथ में नहीं है परन्तु उसके आस–पास रहने वाले लोगों को सावधान व सचेत रखकर संभावित पर्यावरणीय क्षति को कम किया जा सकता हैं।

(ब) भूकम्प से व्यापक रूप से पर्यावरणीय हानि व जान–माल की क्षति होती है। भूकम्प के कारकों को रोकना नामुमकिन है परन्तु इसके प्रभावों पर नियंत्रण करना संभव हैं। भूकम्प से होने वाले नुकसान को पुनःस्थापित करने का कार्य भूकम्प के प्रभावों के अनुसार किया जाता है। भूकम्प से पहाड़ी क्षेत्रों में व्यापक भू–स्खलन देखा जाता हैं जिसमें मार्ग अवरूद्ध हो जाते है और नदियों के प्रवाह बंद होने से नवीन झीलों का निर्माण हो जाता है। मार्ग को स्थिर करने के लिए मार्ग की भुजाओं और तल पर दीवार का निर्माण कर स्खलन की गति को कम किया जा सकता है। भू–स्खलन से नदी प्रवाह को पुनःस्थापित करने का कार्य छोटी–छोटी चैनल बनाकर शुरू किया जा सकता है। नवनिर्मित झीलें अस्थिर रहती है जिससे बाढ़ का खतरा बना रहता है, और व्यापक पर्यावरणीय हानि हो सकती है। भूकम्प से पृथ्वी मंडल की संरचनाएं अस्थिर हो जाती है जिससे पर्यावरणीय संतुलन लगातार बिगड़ता रहता है। संरचनाओं को स्थिर बनाने के लिए सीमेन्टींग मेटेरियल का उपयोग किया जाता है। पृथ्वी की भीतर की संरचनाओं और गतिशीलता की जानकारी का अध्ययन भू–वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता हैं। क्रियाशील भ्रंशों (active faults) की जानकारी एकत्रित की जा सकती है जिसमें भूकंप क्षेत्रों की पहचान कर पूर्वानुमान से पर्यावरण संतुलन बिठाने के प्रयास किए जा सकते है।

(स) अतिवृष्टि व अल्पवृष्टि से जुड़े पर्यावरणीय क्षति को भू–वैज्ञानिक अध्ययनों द्वारा समझ कर कम किया जा सकता है। अतिवृष्टि कई पर्यावरणीय असंतुलनों के कारण हो सकती है। बाढ का कारण अतिवृष्टि, भूकम्प एवं अन्य मानवीय क्रिया–कलाप माने जाते है। बाढ़ के प्रभावों से निपटने के लिए भू–संरचनाओं को समझकर वृक्षारोपण की योजना क्रियान्वित की जानी चाहिए जिससे की भू–स्खलन व मिट्टी के कटाव को कम किया जा सकें। ढाल के कोण को भी सीढ़ीनुमा काट कर बाढ़ के जल की गति को कम किया जा सकता है। ढाल पर चोरस भूमि (terrace) का निर्माण किया जा सकता है। पहाड़ों पर प्रतिकूल–प्रतिरेखीय (cross-contouring) संरचनाओं का निर्माण कर ढाल पर अपरदन को कम किया जा सकता है।

अल्पवृष्टि के कारकों को भी भू–वैज्ञानिक जानकारियों की सहायता से कुशलतापूर्वक समझा जा सकता है। अल्पवृष्टि में प्राकृतिक कारणों के प्रभावों को कम करने में लिए विभिन्न तरीकों से जल संग्रहण की व्यवस्था बनानी होती है। अल्पवृष्टि के कारकों को समझने के लिए भूमि व मृदा का अध्ययन कर वृक्षारोपण की सलाह दी जा सकती हैं। अल्पवृष्टि क्षेत्रों में नहरों का निर्माण कर ग्रीष्म ऋतु में जल की आपूर्ति की जा सकती है। भू–जल के स्तर तथा गुणों का आकलन कर जमीन के भीतर से मीठे जल की प्राप्ति की जा सकती है। इससे लिए दूर–संवेदी प्रक्रिया द्वारा पुराने भूजलीय मार्ग (palaeochannel) का पता लगाया जा सकता है। पृथ्वी की भीतर की संरचनाओं का अध्ययन कर भू–जल पुनःभरण (water recharge) का कार्य किया जा सकता है।

(द) मृदा और भू–जल का प्रदूषण– भौमिकी अध्ययन द्वारा मृदा और भू–जल को शैलकीय सिद्धातों के आधार पर प्रदूषण से बचाया जा सकता हैं। पर्यावरणीय क्षति प्रायः मृदा पर सर्वाधिक प्रभाव डालती है और इसका असर तथा फैलाव व्यापक होता है। मृदा को पानी तथा वायु द्वारा विस्थापित किया जा सकता है इसलिए इसके प्रदूषण के खतरे व्यापक होते है। मृदा के प्रदूषण को संस्तरों से जोड़ के देखा जा सकता है क्योंकि मृदा की जनक शैल होती है। मृदा का जैविकी व रसायनिक तरीकों से इलाज कर प्रदूषण की मात्रा को सीमित किया जा सकता है। मृदा भू–जल का रिसाव नीचे की ओर करती है इसलिए संभावना रहती है कि मृदा का प्रदूषण पानी के साथ घुलकर जमीन के भीतर की ओर चला जाए। भू–जल के बहाव को सीमित करके किसी क्षेत्र विशेष को भू–जल प्रदूषण से मुक्त किया जा सकता है। औद्योगिक अपशिष्ट भू–जल में मिलकर हानि का असर

व्यापक कर सकते है। इस प्रकार से प्रदूषित भू–जल को ग्राउटिंग द्वारा सील करके अस्थाई रूप से नवीन मीठे पानी के स्रोत से पुनःभरण या रिचार्ज किया जा सकता है। औद्योगिक इकाईयों के अपशिष्ट को भू–जल में मिलने से रोकना भी एक तरीका हो सकता है। इस अपशिष्ट को पुनःचक्रित करके दुबारा काम में लिया जा सकता है। चूंकि भू–जल की मात्रा हर क्षेत्र में सीमित होती जा रही हैं इसलिए इसको वर्ष–पर्यन्त संयोजित तरीकों से उपयोग में लेना ही फायदेमंद है।

पर्यावरण के नियंत्रक

निम्न कारकों को पर्यावरण का नियंत्रक माना जाता है–

(1) वायुमंडल संरचना– लगभग 100मी की ऊंचाई तक सभी वायुमण्डलीय गैसें मिश्रण सम (होमोजिनियस) होती है जिसे सममण्डल कहते है। मोटे तौर पर वायु प्रदूषण इसी मण्डल में पाया जाता है। भू–विज्ञान की दृष्टि से खनन, जमीन धंसने व समुद्री लहरों में बदलाव की वजह से सममण्डल में प्रदूषण की संभावना रहती है। सममण्डल में बदलाव को सबसे ज्यादा मानव जाति के लिए हानिकारक माना गया है। वायुमण्डल की ऊपरी परतों में जो परिवर्तन होते हैं उनमें प्रमुख रूप से उद्योगों द्वारा जनित पदार्थो से भिन्न प्रकार के क्षय का आकलन किया गया है। इसलिए वायुमण्डल की प्रत्येक परत में अलग–अलग प्रकार के वायु प्रदूषणों का अध्ययन किया जाता है और इसके विपरीत प्रभावों का ऋतु अनुसार आकलन किया जाता है।

(2) वायुमण्डलीय दाब व ताप– पर्यावरण की गुणवत्ता के प्रमुख नियंत्रक वायुमण्डलीय ताप व दाब को माना गया है। इन दोनों कारकों की वजह से वायुमण्डल का घनत्व, विकिरण, आर्द्रता, मेघाच्छार्द्रता, वर्षा और वायु–गति प्रभावित होते है। वायुमण्डल के दैनिक परिवर्तन इन दोनों कारकों पर ही निर्भर होते हैं। इसलिए दोनों को पर्यावरण का प्रमुख नियंत्रक माना गया है। खनन व ऊर्जा आधारित उद्योगों द्वारा वायु में बारीक कण व ऊष्मा उत्सर्जित होती है जिसकी वजह से वायुमण्डल के ताप व दाब में परिवर्तन देखा जा सकता है। कई ऐसे उद्योग है जो खनिज आधारित हैं और इनमें खनिजों एवं इनसे जुड़े हुए पदार्थों का उत्पादन होता है जो कि वायुमण्डल के ताप व दाब को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करते है। वायुमण्डल की आर्दता व वर्षा पर भी ताप व दाब का प्रभाव रहता है। वायुमण्डल की ऊष्मागतिकी का अध्ययन खनन आधारित उद्योगों से जनित ऊष्मा/रेडियोधर्मिता से जोड़कर करने पर पर्यावरणीय क्षय पर नियत्रंण के प्रयास किए जा सकते है।

(3) समुद्रीय जल– समुद्रीय जल पृथ्वी की सतह पर पाया जाने वाला सर्वाधिक मात्रा वाला द्रव्य पदार्थ है। पूरी पृथ्वी का पर्यावरण समुद्रीय जल से प्रभावित होता है। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले भिन्न प्रकार के अपशिष्ट नदियों द्वारा बहाकर समुद्र में समा जाते है इसलिए समुद्रीय जल को प्रदूषण का सिंक (sink) माना जाता है। समुद्रीय जल की मात्रा पृथ्वी की सतह का लगभग तीन चौथाई हिस्सा है इसलिए अपशिष्ट के प्रभावों का आकलन पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है। हालांकि समुद्रीय तलों पर इसका प्रभाव सर्वाधिक देखा गया हैं। समुद्र के तटीय क्षेत्रों में समुद्रीय जल की गुणवत्ता में गिरावट देखी गयी है। समुद्र का जल व्यापक उपलब्धता के कारण अपशिष्ट समाहित तो करता है पर इससे समुद्रीय जल की गुणवत्ता के स्तर में गिरावट देखी गयी है।

(4) वन क्षेत्रों का फैलाव– खनिज व खनिज आधारित उद्योगों की प्रबलता के कारण वन क्षेत्र के फैलाव मे गिरावट देखी गयी है। वन क्षेत्रों के क्षय का कारण जनसंख्या में अतिवृद्धि भी है जिससे शहरीकरण की सीमाएं पराकाष्ठा को पार कर रही है। वन क्षेत्र पर्यावरण के महत्वपूर्ण नियंत्रक है परन्तु अनेक प्रकार के भू–विज्ञान आधारित क्रियाकलापों के कारण इनका क्षेत्रफल संकुचित होता जा रहा है। नवीन वन क्षेत्र के विकास को मानव के विकास के साथ संतुलित रूप से विकसित किया जाए तो यह प्रभावी नियंत्रक के रूप में कार्य करेगा। भूमि उपयोग आयोजना (land use planning) द्वारा पर्यावरण को पहुंचने वाली उद्योग जनित हानि को पूर्वानुमान से नियंत्रित किया जा सकता है।

(5) भूमि का व्यावहारिक उपयोग– भूमि की उपलब्धता मानवजाति पर आने वाला सबसे बड़ा संकट है। भूमि का उपयोग पर्यावरण की गुणवत्ता के नियंत्रण का मुख्य कारक हैं। किस प्रकार की भूमि का कैसे उपयोग किया जाना है यह विचारणीय विषय है। इसका आकलन ग्राम स्तर से लेकर राष्ट्रस्तर तक योजना बनाकर किया जाए तो पर्यावरण का ग्रामस्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक संरक्षण किया जा सकता हैं। भू–उपयोग को भू–वैज्ञानिक ढंग के योजनागत प्रयासों से बेहतरीन प्रारूप दिया जा सकता हैं। उदाहरण के लिए ब्लॉक या शहर स्तर पर जलनिकासी व्यवस्था (drainage pattern) के वैज्ञानिक अध्ययन से शहरों के अपशिष्ट को सही स्थान पर इकट्ठा कर पुनःचक्रित किया जा सकता है। भूमि के सर्वोत्तम उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण पर सर्वोत्तम नियंत्रण पाया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- भू–जल को जल–संतृप्त व जल–असंतृप्त क्षेत्रों में बांटा जाता है और दोनों क्षेत्रों को विभाजित करने वाले तल को भू–जल स्तर कहते है।
- भू–जल को संग्रहित कर सकने वाली शैलों को जलभृत कहते है। इनमें जल का आगमन/प्रवेश्यता और परागमन/निकासी पृथ्वी पर घटित होने वाले चक्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

- भू–जल को स्रोत के आधार पर विभिन्न प्रकारों जैसे कि सहजात जल, नवीन जल, वितलय जल, ज्वालामुखीय जल में बांटा गया है।
- जलोढ़ निक्षेप, चूना पत्थर, ज्वालामुखी शैल व संगुटिकाश्म अच्छे जलभृत माने जाते है तथा आग्नेय शैल, पंकाश्म व गाद प्रस्तर अच्छे जलभृत की श्रेणी में नहीं आते है।
- भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में भू–विज्ञान के तथ्यों के आधार पर सुरंग, बांध, जलाशय, पुल, सड़क, इमारत आदि के निर्माण का कार्य किया जाना संभव होता है।
- सभी भू–अभियांत्रिक कार्यों के लिए ग्राउटिंग, बोल्टिंग, व मृदा स्थिरीकरण का कार्य निर्माण की पूर्व तैयारी के रूप में भू–वैज्ञानिक की सलाह से किया जाता है।
- दूर संवेदन का कार्य हवाई–फोटोग्राफी और उपग्रह की मदद से किया जाता है। हवाई–चित्र व इमेजरी के अध्ययन करने के लिए स्टिरियोस्कोप व इलेक्ट्रोमेग्नेटिक स्पेकट्रम (spectrum) का क्रमशः उपयोग किया जाता है।
- दूर संवेदन की प्रक्रिया से किया जाने वाला अध्ययन कार्य शैलों के विभेदन, भू–आकृतियों के अध्ययन, प्रवेश्य व अप्रवेश्य शैलों में विभेदन, अपरदन को ज्ञात करना, भौमिकी संरचना का मानचित्रण, भू–जल स्रोतों के अध्ययन, समुद्रीय स्रोतों के आकलन आदि के लिए महत्वपूर्ण है।
- भू–वैज्ञानिकी कार्यों; जैसे कि खनन, समुद्री तल पर खनन, रेडियोधर्मी खनिजों व अन्य ऊर्जा उत्सर्जित करने वाले खनिज आधारित उद्योगों, आदि में भूविज्ञान का उपयोग पर्यावरण संरक्षण में किया जाता है।
- पर्यावरण के विभिन्न नियंत्रक व कारक जैसे कि ताप, दाब, जलस्तर, जलचक्र, वन, वनस्पति आदि के प्रभावों का अध्ययन भू–विज्ञान के तथ्यों के आधार पर किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वायुमण्डलीय स्रोत से प्राप्त भू–जल का नाम है–
   (अ) मैग्मेटिक वाटर (ब) मिटियोरिक वाटर
   (स) कोनेट वाटर (द) मैटामोरफिक वाटर
2. जलसंरचना युक्त वह शैल जो अपारगम्य होने के कारण भू–जल रहित है–
   (अ) एक्वीफ्यूज़ (ब) एक्वीफर
   (स) एक्वीक्लूयड (द) एक्वीटार्ड
3. पेलिक्यूलर जल कौन से भूगर्भीय जल क्षेत्र में मिलता है–
   (अ) वाडोस क्षेत्र (ब) कैपेलरी क्षेत्र
   (स) मृदा–जल क्षेत्र (द) संतृप्त क्षेत्र
4. निम्न में से कौनसी शैल अच्छी जलभृत मानी जाती है–
   (अ) ग्रेनाइट (ब) नीज़
   (स) चूना पत्थर (द) उपर्युक्त कोई नहीं
5. निम्न में से कौनसा गुण अच्छे इमारती प्रस्तर में होना आवश्यक है–
   (अ) मज़बूती (ब) कठोरता
   (स) स्थिरता (द) उपर्युक्त सभी
6. निम्न में से कौनसा कार्य भू–अभियांत्रिकी परियोजना में स्थल सुधार में प्रयुक्त नहीं होता है–
   (अ) ग्राउटिंग (ब) ब्लासटिंग
   (स) बोल्टिंग (द) मृदा–स्थरीकरण
7. निम्न में से कौनसा गुण एरियल फोटोग्राफी में कैमरे के लेन्स में होना आवश्यक नहीं है–
   (अ) अत्यधिक विभेदन (ब) न्यूनतम विरूपण
   (स) अधिकतम कम्पन (द) उपयुक्त अंशशोधन
8. थीमेटिक मानचित्रण में सोबेल 7 फिल्टर का उपयोग किस कार्य के लिए किया जाता है–
   (अ) प्रवेश्यता और अप्रवेश्यता में अंतर हेतु
   (ब) अपरदन सूचक ज्ञात करने के लिए
   (स) भौमिकिय संरचना मानचित्रण हेतु
   (द) भू–जल स्रोतों के अध्ययन के लिए
9. क्रियाशील भ्रंशों की जानकारी से निम्न में से किस प्राकृतिक आपदा का आकलन किया जा सकता है–
   (अ) ज्वालामुखी (ब) भूकम्प
   (स) रेडियोधर्मिता (द) अतिवृष्टि
10. निम्न में से क्या पर्यावरण नियंत्रण की श्रेणी में आता है?
   (अ) वायुमण्डल संरचना (ब) वायुमण्डलीय दाब
   (स) वायुमण्डलीय ताप (द) उपर्युक्त सभी

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न (20 शब्द)

1. जलभृत को परिभाषित कीजिए।
2. अप्रवेश्य शैलों के उदाहरण दीजिए।
3. सहजात जल की परिभाषा बताइए।
4. भू–जल स्तर किसे कहते है?
5. भवन निर्माण में काम आने वाली शैलों के नाम बताइए ?
6. भू–स्खलन के प्रमुख कारण बताइए ?
7. कौनसी चट्टानें पुल निर्माण में तल के लिए उपयुक्त मानी गयी है।
8. सुरंग को परिभाषित करें।

9. इमेजरी क्या होती है?
10. अपरदन सूचक किस तकनीक से ज्ञात किया जा सकता है।
11. पानी का प्रदूषण दूर संवेदन में किस विघुतचुबंकिय स्पेकट्रम (electromagnetic spectrum) से ज्ञात किया जा सकता है?
12. TM 1+5/1-5 मानचित्र का उपयोग कहां किया जाता है?
13. ज्वालामुखी से पर्यावरण को किस प्रकार की हानि हो सकती है?
14. खनन की धूल से खननकर्मियों में कौनसी बीमारी पायी जाती है?
15. समुद्र में तेल रिसाव से क्या–क्या खतरे होते है?
16. क्रॉस–कंटूरिंग का क्या अर्थ है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न (250 शब्द)

1. एक्वीक्लुयड और एक्वीफ्युज में अंतर स्थापित कीजिए।
2. ऐरेशन के क्षेत्र के तीनों उपभाग समझाइए।
3. जलोढ़ निक्षेपों को जलभृत के रूप में बताइए।
4. भू–जल के प्रकार संक्षेप में बताइए।
5. सड़क निर्माण में काम आने वाली शैलों का विवरण दीजिए।
6. भू–स्खलन में चूना पत्थर की भूमिका बताइए।
7. सुरंग बनाने में किस प्रकार की भूगर्भीय जांचे आवश्यक है?
8. भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में स्थान–सुधार की प्रक्रिया को समझाइए।
9. प्रवेश्य व अप्रवेश्य शैलों में अंतर दूर संवेदन से समझाइए।
10. शैलों में Thematic Mapper (TM) से विभेदन कैसे करना चाहिए?
11. ऐरियल फोटोग्राफी लेते समय क्या–क्या सावधानियां बरतनी चाहिए?
12. दूर संवेदन से समुद्रीय संसाधनों का आकलन कैसे किया जाता है?
13. मानव जनित पर्यावरण प्रदूषण के कारकों को समझाइए।
14. भूकम्प से होने वाली पर्यावरण की हानि को संक्षेप में बताइए।
15. वायुमंडल की संरचना किस प्रकार से पर्यावरण को नियंत्रण करती है?
16. भूमि के व्यावहारिक उपयोग से पर्यावरण नियत्रंण को समझाइए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. जलचक्र को सचित्र समझाइए। जलचक्र में भू–जल की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
2. विभिन्न अभियांत्रिकी परियोजनओं में भू–वैज्ञानिक के महत्व को विस्तार से समझाइए।
3. दूर संवेदन से विभिन्न संसाधनों के स्रोतों को ज्ञात करने की विधि बताइए।
4. पर्यावरण के संतुलन में भू–वैज्ञानिक की भूमिका को स्पष्ट करते हुए विस्तार से समझाइए।

उत्तरमाला: 1. (ब) 2. (द) 3. (अ) 4. (स) 5. (द) 6. (ब) 7. (स) 8. (अ) 9. (ब) 10. (द)